Dr. Vandana Suman
Professor
Dept of Philosophy
H. D. Jain College, Ara

M. A II sem.
CC-07 : Gandhian Philosophy

## "Religion" (धर्म)



महात्मा गाँधी के विचारों में एक मौलिकता है, नवीनता तथा ताजगी है फिर भी यह सच है कि उनके विचारों ने अन्य प्रभावों के अनुरूप ही अपना रूप लिया है। एक प्रमुख प्रभाव जिसकी छाप उनकी मानसिकता पर उनके प्रारम्भिक जीवन में ही पड़ी, वह हिन्दू परम्परा की छाप है। उनका बाल्यकाल, एक ऐसे वातावरण में व्यतीत हुआ था, जिसमें हिन्दूधर्म एवं परम्परा के प्रति प्रबल आस्था थी। बहुत ही छोटी उम्र में गाँधी ने गीता तथा रामायण का अध्ययन कर लिया था और इनके साथ वैष्णव तथा जैन साहित्य में प्रवेश पा लिया था। इन अध्ययनों से उनकी धार्मिकता तथा नैतिकता भावना को पनपने का आधार मिल गया।

गीता को महत्व देने के कारण लोग कभी-कभी गाँधी को हिन्दुधर्म का ही प्रवर्तक कह देते हैं, अतः गाँधी स्पष्ट करते हैं कि 'धर्म' से वे हिन्दु धर्म या किसी विशेष धर्म को सूचित नहीं करते। धर्म किसी विशेष धर्म से परे है, ऊपर है। गाँधी के अनुसार धर्म वह शक्ति है जो मनुष्य के स्वभाव को पूर्णतया परिवर्तित कर देता है, जो मानव का सत्य के साथ जोड़कर आत्म शुद्धि का साधन बन जाता है। यह मानव-स्वरूप का वह शाश्वत पक्ष है जो तबतक अशान्त रहता है जबतक वह अपनी आत्म की वास्तविकता न समझ ले तथा सत्य रूप ईश्वर की उपलब्धि के रूप में अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति न कर ले।

गाँधी के अनुसार धर्म मानव के शाश्वत स्वरूप की अभिव्यक्ति है। मानव की पाशविक प्रवृत्तियाँ या उसका जैविक पक्ष उसका शाश्वत स्वरूप नहीं है। उसको

शाश्वत स्वरूप का ईश्वरीय पक्ष है जिसे जैसा कि हमने देखा है गाँधी मानव का आन्तरिक 'शुभात्म-रूप' कहते हैं। धर्म इसी पक्ष की अभिव्यक्ति है। पुनः धर्म आत्म-शुद्धता एवं आत्मोत्थान का साधन है। यह 'आत्म' की अभिव्यक्ति है, अतः इसमें यह शक्ति निहित है कि वह 'मानव स्वभाव' को परिवर्तित कर सके, उसके विचार, कर्म आदि को भौतिक प्रवृत्तियों के स्थान पर शुभत्व-रूप के अनुरूप बना सके। अपनी शाश्वत वास्तविकता के अनुरूप होना ही आत्म-शुद्धता है। पुनः गाँधी का कहना है कि धर्म में यह शक्ति भी निहित है कि वह मानव के अन्तर में एक प्रकार की अशान्ति उत्पन्न करे। यह अशान्ति दैनिक जीवन की सामान्य अशान्ति जैसी नहीं, बल्कि यह एक प्रकार की आध्यात्मिक प्यास है — जो मानव को शुभ एवं उच्चता को आत्मसात करने के लिए प्रेरित करती है और तब तक शान्त नहीं होती जब तक उसमें पूर्ण नैतिकता का भाव नहीं जागे। पुनः गाँधी यह भी कहते हैं कि धर्म में 'परात्मकता' की ओर अग्रसर होने की एक चेतन प्रेरणा भी है। धर्म इस अवधारणा पर आधृत है कि यह वस्तुतः ईश्वरत्व प्राप्ति के लक्ष्य से ही प्रेरित है। पुनः गाँधी के अनुसार यह सब 'सत्य' की प्रतिनिष्ठा तथा सत्य के 'अनुशीलन' से ही सम्भव हो सकता है। इसके बिना धर्म के सभी अन्य स्वरूप निष्प्राण प्रतीत होंगे। इसलिए सत्य के प्रति पूर्ण समर्पण के साथ विचार-आचार की अभिव्यक्ति ही धर्म है।

गाँधी के अनुसार धर्म मात्र एक सैद्धान्तिक अवधारणा नहीं है

जो हमारी बौद्धिक जिज्ञासा को शान्त करता है, वह तो जीवन की एक अनिवार्य व्यावहारिकता है जीने का आधार एवं व्यवस्था देता है। गाँधी का तो कहना है कि यदि कोई धर्म व्यावहारिक आवश्यकताओं की पूर्ण उपेक्षा करता है तो वह धर्म ही नहीं है। इनके अनुसार वास्तविक धर्म को अनिवार्यतः व्यावहारिक होना ही है। इसी कारण इनकी अनुशंसा है कि धर्म को तो धर्म के हर पक्ष में व्याप्त होना चाहिये।

गाँधी के अनुसार धर्म सत्य के प्रति पूर्ण समर्पण तथा सत्य का निष्ठापूर्ण अनुशीलन है, तो इसका अर्थ है कि धर्म सत्य का आग्रह ही है — सत्याग्रह है। यदि कोई निष्ठापूर्वक सत्य एवं अहिंसा का मार्ग अपनाता है, तो वह धर्ममार्ग पर है। किन्तु सत्याग्रह के उपयुक्त अनुशीलन के लिए आत्म-नियंत्रण तथा आत्म शुद्धता अनिवार्य है। इसी कारण धर्म के अन्तर्गत प्रार्थना ईश्वर के प्रति पूर्ण भक्ति एवं समर्पण आत्म-बलिदान की सहजता प्रेम, सहिष्णुता आदि धार्मिक वृत्तियों के रूप में अनुशासित है।

गाँधी के लिए प्रार्थना का बड़ा ही प्रबल महत्व एवं मूल्य है। इनके जीवन में ऐसे अनेकों आपात के क्षण आ(ये) जिनमें गाँधी एकान्त में सिमट कर प्रार्थना एवं ध्यान में रत हो जाते। इससे हर बार इन्हें अपार आत्मिक शक्ति तथा आस्था प्राप्त होती थी। गाँधी के अनुसार प्रार्थना का अर्थ ईश्वर से कुछ माँगना नहीं है, तो आत्मा का परमात्मा के प्रति आह्वान है। यह आत्म की विकलता की अभिव्यक्ति है। और इसके द्वारा आन्तरिक जीवन संगठित होता है और शान्ति मिलती है। इसी कारण गाँधी जी

चाहते हैं कि प्रार्थना तो धर्म का प्राण है, यह मानव के जीवन का सार है। मानव जीवन के लिए धर्म अनिवार्य है, तथा धर्म के लिए प्रार्थना है। गाँधी का कहना है कि धर्म की माँग है कि मनुष्य के अन्तर में धार्मिकता का जागरण हो। इसके लिए जीवन तथा इन्द्रिय-जनित प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखना अनिवार्य है। गाँधी जी के अनुसार धर्म एक सुन्दर जीने का ढंग होता है, अतः व्यक्ति को अपने जीने के ढंग के चयन की स्वतंत्रता होनी चाहिये। किन्तु धार्मिक चुनाव की इस स्वतंत्रता में एक अन्य विचार अनिवार्यतः निहित है। गाँधी जी का कहना है कि यदि व्यक्ति को अपने जीने के ढंग को चुनने की स्वतंत्रता है तो उसके लिए यह भी अनिवार्य हो जाता है कि अन्य व्यक्तियों ने जो अपने-अपने लिये ढंग चुने हैं उन विभिन्न ढंगों के प्रति भी उसमें सहिष्णुता हो, तथा उनके प्रति भी वह आदर की भावना रखे। गाँधी स्वीकारते हैं कि सभी धर्म समान है सत्य है। वे स्पष्ट कहते हैं कि सभी धर्म उतने ही ठीक हैं जितना हिन्दू धर्म। किन्तु धर्मों से जो विवाद तथा फसाद उत्पन्न होता रहता है, उसके लिए गाँधी जी का अनुशासन है कि यदि किसी धर्म को यह सही सोचना है कि उसी का धर्म ठीक है, अतः अन्य को भी उसी के धर्म को स्वीकारना चाहिए। गाँधी जी का कहना है कि धर्मों के प्रति ऐसी उदार अभिवृत्ति होनी चाहिए कि हम यह समझें कि हर धर्म

अपने धर्मावलम्बी को एक श्रेष्ठतर मानव बनाने की क्षमता रखता है। गाँधी के मन में हिन्दू धर्म की सीमाओं तथा दोषों के बाद भी उसके प्रति एक बन्धन तथा सान्निध्य की भावना है। उनका कहना है कि गीता तथा तुलसी रामायण की उन्हें जानकारी है और उन्हें लगता है कि ये दोनों ग्रंथ वे जितना प्रभावित तथा आह्लादित होते हैं, उतना अन्य किसी पुस्तक से नहीं। इसी प्रकार की भावना के कारण गाँधी पर कभी-कभी हिन्दू धर्म के लिए पक्षपात का आरोप भी लगता है। किन्तु उनका कहना है कि उनका यह विशिष्ट प्रेम है किन्तु यह उन्हें हिन्दू धर्म का पक्षपाती नहीं बनाता।

हिन्दू धार्मिक विचारों के सम्बन्ध में गाँधी का मत बहुत दूर तक मात्र निश्चित ही है। वे इस सिद्धान्त की कुछ बातों की स्पष्ट आलोचना भी करते हैं कुछ बातों को वे सामान्य रूप में मान्यता देते हैं तथा हिन्दू धर्म की कुछ ऐसी ही बातें हैं जो उनके अपने विचारों को पूर्णतया प्रभावित एवं निर्धारित करती हैं। जैसे — हिन्दू धर्म में प्रचलित 'अछूत' के विचार की तीव्र आलोचना करते हुए गाँधीजी कहते हैं कि हिन्दू धर्म में जब इस विचार को मान्यता मिलती है तब यह मानवता के विरुद्ध एक पापकर्म ही है। वे यहाँ तक कहते हैं कि इस 'अछूत' सिद्धान्त के अनुसरण में हिन्दू धार्मिक ने रहकर स्वयं चाण्डाल बन जाता है। इसी प्रकार 'पशु-बलि' के विरुद्ध बोलते हुए गाँधी जी कहते हैं कि इसकी अनुशंसा वेदों में होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि यह सृष्टि के प्रति अपराध है।

हिन्दू धर्म के ऐसे सभी विचार जो सत्य तथा अहिंसा के परम आदर्शों से तनिक भी असंगत है, गांधी जी के द्वारा मान्यता नहीं पा सकते।

गांधी जी का ईश्वर विचार एक प्रकार से वैष्णव ईसाइयत पर ही आधृत है। हिन्दू विचार में निहित 'अवतारवाद', मूर्तिपूजा, वंशानुक्रम तथा परम्परा का धार्मिक 'महत्व', आदि जैसे विचार का गांधी के लेखों में उल्लेख होता रहा है, मगर यह अवश्य है कि इन सभी विचारों को गांधी अपने मूल 'सत्य एवं अहिंसा - विचार' के अनुरूप रंग देते हैं।

एक विशिष्ट विचार जिसका उल्लेख गांधी जी के लेखों में अनेक स्थलों पर होते हैं, और जिसे एक प्रकार से गांधी के द्वारा मान्यता भी मिलती है वह है, वर्णाश्रम धर्म तथा वर्ण से सम्बन्धित विचार गांधीजी के अनुसार (वर्णाश्रम) जो जन्म से ही निर्धारित होता है, अपने में एक स्वस्थ विचार अवश्य है वर्तमान काल में जो जातिवाद दिखाई देता है वह वर्णाश्रम नहीं है बल्कि इसका बड़ा ही विकृत रूप है गांधी जी का कहना है कि वर्णाश्रम विचार का उद्देश्य इस विश्वास तथा धारणा पर आधृत था कि हर व्यक्ति में उसके वंश तथा परम्परा के अनुरूप समाज के कुछ विशिष्ट कार्यों को सम्पन्न करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है, अतः उसका यह कर्तव्य हो जाता है, कि अपनी इस क्षमता का लाभ वह समाज को दे। उसका कर्तव्य है कि वह अपने समाज तथा राज्य के संरक्षण तथा विकास में अपनी क्षमता का पूरा योगदान दे।

गाँधी जी का कहना है कि वस्तुतः जीवन लक्ष्य धन अर्जित करना नहीं है क्योंकि इसकी तो कोई सीमा ही नहीं है। और यदि इसी लक्ष्य की पूर्ति पर सारा ध्यान केन्द्रित हो जाय तो जीवन का जो वास्तविक लक्ष्य है उससे व्यक्ति दूर हट जाता है। गाँधी जी स्वीकारते हैं कि जीवन का वास्तविक लक्ष्य अपने अन्तर में निहित ईश्वरत्व - आत्मतत्त्व अथवा आध्यात्मिक शक्ति - को जागृत करना। गाँधी जी का कहना है कि वर्णाश्रम का आदि विचार इसी मूल लक्ष्य की ओर प्रेरित था। जब इस मूल लक्ष्य की ~~अपेक्षा कर जीवन की~~ उपेक्षा कर जीवन को धनोपार्जन की लोलुपता में लगा देने का प्रयत्न प्रारम्भ हो गया, तभी वर्ण विचार दूषित होने लगा। धीरे-धीरे इसके स्वाभाविक विभाजन के स्थान पर इसका कृत्रिम विभाजन होने लगा तथा इन नये-नये विभाजन के कर्मों का आधार भी समाज के स्थान पर स्वार्थ बनता गया। फलतः वर्णों के स्थान पर हिन्दू समाज अनेकों जातियों में बँटता चला गया। गाँधी जी का कहना है कि यह बात 'वर्णाश्रम' के स्वरूप से सर्वथा विपरीत है। अपने प्रारम्भिक रूप में वर्णाश्रम-व्यवस्था एक स्वस्थ व्यवस्था थी अतः इस रूप में इसे स्वीकारने में गाँधी जी को हिचक नहीं है।